© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

कबीरदास और आधुनिक काव्य–संवेदना

डॉ० इति अपराजिता

सहायक शिक्षिका (हिन्दी)

हिन्दू +2 हाई स्कूल, हजारीबाग,भारत।

कबीर अपने समय के बहु आयामी व्यक्तित्व से परिपूर्ण एक मात्र कवि थे। समाज सुधारक, ढोंग, आडम्बर की धज्जियाँ उड़ाने वाला, धार्मिक संकीर्णता को समाप्त कर एक नई धार्मिक संस्कृति और सामाजिक चेतना का शंखनाद करनेवाला, ऐसा कवि हिन्दी साहित्य के आकाश में जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में आज भी अपनी पुरानी पहचान और तीखे तेवर के लिए प्रसिद्ध है। इन्होंने अपनी पूर्ववत्ती परम्पराओं, साधना पद्धतियों एवं विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होते हुए भी अपने अस्तित्व को नयापन देते हुए पूर्णतः स्वतंत्र रखा। स्मरण मात्र से पाँच सौ वर्षों की धूल की परतें अपना अस्तित्व खो देती हैं और कबीर का व्यक्तित्व आज के सन्दर्भ में किस कदर अनिवार्य है, यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन कितना सटीक है। वे लिखते हैं – "कबीरदास का रास्ता उल्टा था। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं वे प्रायः उनके लिए बंद थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे बए थे। वे भगवान के नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्त्ति थे। नृसिंह की भाँति वे नाना असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन–बिंदु पर अवतीर्ण हुए थे।"[1] आचार्य द्विवेदी जी ने कबीरदास के अलौकिक व्यक्तित्व को स्वीकार किया। आचार्य द्विवेदी जी कबीरदास को लोक कवि मानते थे। हिन्दी साहित्य की भूमिका में हजारीप्रसाद द्विवेदी की प्रस्तावना इस प्रकार है– "मैं इसी रास्ते सोचने का प्रस्ताव करता हूँ। मतों, आचार्यों, सम्प्रदायों और दार्शनिक चिन्ताओं के मान–दंड से लोकचिंता को नहीं मापना चाहता बल्कि लोकचिन्ता की अपेक्षा में उन्हें देखने की सिफारिश कर रहा

हूँ।" आचार्य शुक्ल की प्रतिज्ञा में केन्द्रीय प्रयोग 'जनता की चित्रवृत्ति' है तथा आचार्य द्विवेदी की प्रस्तावना में ऐसा प्रयोग 'लोक–चिंता' का है। हजारीप्रसाद द्विवेदी का प्रिय शब्द 'लोक' है जो जनता के अपेक्षाकृत पिछड़े वर्ग को संकेतित करता है। तब यह भी स्वाभाविक है कि आचार्य शुक्ल के मानक कवि जनता में प्रिय कवि तुलसी हैं, जब कि द्विवेदी के मानक कवि लोक में प्रिय कवि कबीर हैं।"[2]

उपर्युक्त व्याख्या ने कबीर को लोक में केन्द्रित करते हुए भी उनके व्यक्तित्व को विस्तार प्रदान किया। कबीर के व्यक्तित्व की प्रखरता के कारण ही आचार्य द्विवेदी ने न केवल अपने साहित्य में इन्हें सजाया–सँवारा बल्कि अपने मानक कवि के रूप में इन्हें स्थापित भी किया।

कबीर की महत्ता वहाँ साबित होती है जब वे अपने काव्य का लक्ष्य सामाजिक चेतना तथा हिन्दू मुस्लिम एकता को बना कर समाज में नई क्रांति का शंखनाद करते हैं। इस क्षेत्र में उनके व्यक्तित्व में और भी निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता को बल मिला है। रामचन्द्र तिवारी जी ने इसे और स्पष्ट करते हुए लिखा है – "उनकी कविता में उनकी आत्मा की यह तड़प स्पष्ट लक्षित होती है। आधुनिक शब्दावली का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि कबीर की कविता उनके सहज जीवन–बोध और तत्कालीन समाजव्यापी मिथ्याचार के बीच उत्पन्न द्वन्द्व एवं तनाव की कविता है। कबीर की कविता में लक्षित होने वाला यह तनाव ही वह बिन्दु है, जहाँ आज का कवि अपने को कबीर के साथ खड़ा पाता है।"[3] एक कवि की सफलता यही है कि हर व्यक्ति उसकी रचनाओं के इर्द–गिर्द ही खुद को महसूस करता है। इस कवि की निर्भीकता भरी ललकार ही इसकी पहचान है, जो युगों–युगों तक अन्यत्र दुर्लभ रही है। कबीर की दृढता, यथार्थ–दर्शिता, मस्ती, फक्कड़पन, विवेकशीलता, अभेद–दृष्टि चारित्रिक निर्मलता आदि अन्य विशेषताएँ आज भी साहित्यकारों एवं पाठकों के लिए विशेष आकर्षण और महत्व रखती है। एक अकेले कवि ने निर्भय होकर पंद्रहवीं शती की सम्पूर्ण धर्म एवं समाज व्यवस्था को चुनौती दिया, यह सचमुच आश्चर्यजनक बात है।

कबीर की मानसिकता और आधुनिक काव्यसंवेदना में एक बड़ा अन्तर अन्य बिन्दु पर भी है। उनकी रहस्यानुभूति आधुनिक काव्य संवेदना से बिल्कुल मेल नहीं खाती। आज का कोई भी कवि रहस्यमय प्रियतम के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके अद्वैत भाव की साधना नहीं कर सकता। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने रहस्यवाद के व्योम में स्वतंत्र विचरण किया परन्तु परवर्त्ती कवियों में किसी की भी गणना नहीं की जा सकती है। आज का यथार्थवादी

कवि किसी रहस्यलोक की कल्पना नहीं कर सकता। आधुनिक काव्य स्वप्न, फैंटेसी, कल्पना, रहस्यानुभूति आदि की मनौवैज्ञानिक व्याख्या की कसौटी पर परखता है। कबीर की द्वन्दातीत मनःस्थिति और परम प्रियतम के साथ अद्वैत भाव की स्थापना के साथ आधुनिक वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि और वस्तु परक भाव–बोध का सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता।

उनके काव्य का केन्द्र बिन्दु राम हैं। उनकी आत्मा निर्गुण राम में अटूट है। वे देश काल–बद्ध सामयिक या क्षणिक सत्य न होकर नित्य, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिसम्पन्न अखिल सृष्टि के नियामक परम तत्व थे। परन्तु आज का कवि किसी ऐसी शक्ति या किसी ऐसे तत्व की ओर अपनी उतनी आस्था नहीं रखता। जबकि आज का कवि तो यह घोषणा करता है –

"मैं नया कवि हूँ

इसलिए सच्ची चोंटें बाँटता हूँ

झूठी मुस्कानें नहीं बेचता

(सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कविता मैं कवि हूँ)

यह सत्य है कि कबीर ने सामाजिक रूढ़ियों विकृतियों एवं विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया है। कबीर की यह विद्रोहात्मक प्रवृत्ति एवं मान्यताएँ मात्र तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तक ही सीमित है। यह विद्रोह समग्र व्यवस्था या राजसत्ता तक नहीं पहुँचती है। राम चन्द्र तिवारी जी के शब्दों में "कबीर ने कहीं राजसत्ता को चुनौती नहीं दी है। आर्थिक उत्पीड़न के प्रति आक्रोश व्यक्त नहीं किया। मात्र धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों एवं विकृतियों को ही उन्होंने लक्ष्य बनाया है।"[4]

तात्पर्य यह है कि कबीार सामाजिक क्रांतिकारी, जीवन दर्शन एवं ओजस्वी स्वर बिन्दु है जो शत–प्रतिशत आज के काव्य संवेदना के निकट है। परन्तु इन सभी मान्यताओं से ऊपर उठकर समत्व बोध की साधना आज के वस्तुपरक दृष्टि सम्पन्न कवि की मानसिकता से मेल नहीं खाती। जो लोग साठोत्तरी कविता को ''कबीर की पीढ़ी की कविता'' कहते हैं वे भी कबीर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सामने न रखकर मात्र विद्रोही व्यक्तित्व को ही दृष्टि में रखते हैं। कबीर हाथ में लुकाठी लेकर चलने वाले पूर्ववर्त्ती एवं परवर्त्ती कवियों में एक मात्र ही हैं जो पूरे समाज के बीच अकेले

अपनी आस्था के बल पर अडिग खड़े हुए। इस दृष्टि से वे आज की विद्रोही पीढ़ी को नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं। तब शायद आज का भी कोई कवि यह घोषणा कर सके –

"हम घर जारा आपनां, लिए मुराड़ा हाथि।

अब घर जानौ तास का, जो चलै हमारै साथि।।"[5]

संदर्भ संकेत :

1. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद : कबीर, पृ० 144
2. चतुर्वेदी, डॉ० रामस्वरूप : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० 31
3. तिवारी, डॉ० रामचन्द्र : 'कबीर मीमांसा', पृ० 177
4. तिवारी, डॉ० रामचन्द्र : 'कबीर मीमांसा', पृ० 178
5. तिवारी, डॉ० पारसनाथ : 'कबीर ग्रंथावली', पृ० 160